IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# भारतीय ज्ञान परंपरा: एक समाजशास्त्रीय, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

जय प्रकाश भट्ट

**शोध सारांश**

भारतीय ज्ञान परंपरा को अक्सर केवल प्राचीन ग्रंथों या धार्मिक विचारों तक सीमित समझ लिया जाता है, जबकि वास्तविकता इससे कहीं व्यापक है। यह एक ऐसी जीवंत परंपरा है, जो हजारों वर्षों से भारतीय समाज, संस्कृति और जीवन पद्धति में रची-बसी है। इस शोध आलेख का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल ऐतिहासिक या दार्शनिक विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन दृष्टि के रूप में समझना है, जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति तीनों के बीच संतुलन स्थापित करती है। इस अध्ययन में भारतीय ज्ञान परंपरा को विभिन्न आयामों जैसे ऐतिहासिक, दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक के आधार पर विश्लेषित किया गया है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक इसकी निरंतरता और परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से यह देखा गया है कि किस प्रकार वेद, उपनिषद, महाकाव्य, शास्त्रीय विचार, श्रमण परंपराएँ और लोक जीवन सभी मिलकर एक बहुआयामी ज्ञान संरचना का निर्माण करते हैं।

यह लेख यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल सैद्धांतिक नहीं है, बल्कि व्यवहारिक है जिसमें नैतिकता, कर्तव्य, सह-अस्तित्व, और समग्र जीवन दृष्टि प्रमुख तत्व हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह एक सामाजिक तंत्र के रूप में कार्य करती है, जो धर्म, संस्कार, परंपरा और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण और एकता को बनाए रखती है। समकालीन संदर्भ में यह अध्ययन विशेष महत्व रखता है, क्योंकि आज का समाज नैतिक संकट, पर्यावरणीय असंतुलन, मानसिक तनाव और सांस्कृतिक अस्मिता जैसे प्रश्नों से जूझ रहा है। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा के कई तत्व जैसे योग, ध्यान, प्रकृति के साथ संतुलन और कर्तव्य आधारित जीवन समाधान के रूप में सामने आते हैं। हालांकि, इस आलेख में यह भी स्वीकार किया गया है कि इस परंपरा को अंधानुकरण के रूप में नहीं अपनाया जा सकता । इसके लिए आवश्यक है कि इसे आलोचनात्मक दृष्टि से समझा जाए और आधुनिक संदर्भ में पुनर्पाठ किया जाए। अंततः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की संभावना भी है। यदि इसे सही रूप में समझा और जीवन में उतारा जाए, तो यह एक संतुलित, मानवीय और टिकाऊ समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

## 1. प्रस्तावना

भारत को समझने के लिए केवल उसके इतिहास या भूगोल को जान लेना पर्याप्त नहीं है। भारत को वास्तव में समझना है तो उसकी ज्ञान परंपरा को समझना होगा। यह परंपरा केवल पुस्तकों या शास्त्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में—परिवार, समाज, प्रकृति और व्यक्ति के व्यवहार में—प्रकट होती रही है (Mukerji, 1942; Madan, 1991)। यही कारण है कि भारत को एक "जीवित सभ्यता" कहा जाता है, जहाँ ज्ञान केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि जिया जाता है (Basham, 1954)।

वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, लोक परंपराएँ और गुरु-शिष्य संबंध—ये सभी मिलकर इस ज्ञान परंपरा को निरंतर आगे बढ़ाते रहे हैं (Radhakrishnan, 1953)। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल जानकारी प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन को सही दिशा देना रहा है। आज के समय में जब समाज तेजी से बदल रहा है, तब इस परंपरा की ओर फिर से ध्यान जा रहा है। तकनीकी विकास और आधुनिकता ने जहाँ नई संभावनाएँ दी हैं, वहीं कई समस्याएँ भी सामने आई हैं—नैतिक भ्रम, मानसिक तनाव, पर्यावरण संकट और जीवन में असंतुलन।

ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा आज भी प्रासंगिक है? नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) को शामिल करने का प्रयास इसी दिशा का संकेत है (Government of India, 2020), जो यह बताता है कि अब शिक्षा को केवल रोजगार तक सीमित नहीं रखा जा सकता, बल्कि उसे जीवन, संस्कृति और मूल्यों से भी जोड़ना आवश्यक है।

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष , समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा गढवाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढवाल उत्तराखंड

इस संदर्भ में यह समझना जरूरी हो जाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा वास्तव में क्या है, इसकी विशेषताएँ क्या हैं, और वर्तमान तथा भविष्य में इसकी क्या भूमिका हो सकती है। यही प्रश्न इस लेख की आधारभूमि तैयार करते हैं।

**2. भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ एवं परिभाषा**

भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि यहाँ "ज्ञान" और "परंपरा" का अर्थ सामान्य अर्थों से थोड़ा अलग और गहरा है। ज्ञान का अर्थ केवल जानकारी (information) या तथ्य (facts) तक सीमित नहीं है। भारतीय संदर्भ में ज्ञान का मतलब है—जीवन को समझना, अपने कर्तव्यों को पहचानना, और सही-गलत का विवेक विकसित करना। यह केवल पढ़ने या सुनने की चीज नहीं है, बल्कि अनुभव और आचरण से जुड़ी हुई प्रक्रिया है (Radhakrishnan, 1953)। इसी तरह "परंपरा" का अर्थ केवल पुरानी बातों को दोहराना नहीं है, बल्कि वह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी अनुभव, मूल्य और जीवन दृष्टि हस्तांतरित होते रहते हैं। इस दृष्टि से "भारतीय ज्ञान परंपरा" वह समग्र ज्ञान है, जो समय के साथ विकसित हुआ, लेकिन अपनी मूल भावना को बनाए रखता रहा। यह ज्ञान केवल ग्रंथों में ही नहीं, बल्कि लोकजीवन, व्यवहार, संबंधों और प्रकृति के साथ जुड़ाव में भी दिखाई देता है (Mukerji, 1942; Madan, 1991; Kapoor, 2019)।

यदि हम इसे पश्चिमी ज्ञान दृष्टि से तुलना करके देखें, तो एक स्पष्ट अंतर सामने आता है। पश्चिमी ज्ञान अधिकतर तर्क, प्रयोग और विश्लेषण पर आधारित है और उसका केंद्र बाहरी दुनिया को समझना होता है, जबकि भारतीय ज्ञान तर्क के साथ-साथ अनुभव और आत्मबोध को भी महत्व देता है। यहाँ बाहरी और आंतरिक—दोनों जगत को समझने का प्रयास किया जाता है (Hiriyanna, 1993)। भारतीय समाजशास्त्रियों ने भी इस परंपरा को इसी व्यापक दृष्टि से समझाया है। राधकमल मुखर्जी के अनुसार भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य समाज और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना है, जबकि जी. एस. घुर्ये इसे सांस्कृतिक निरंतरता का आधार मानते हैं, जहाँ परिवर्तन के बावजूद मूल मूल्य बने रहते हैं (Mukerjee, 1949; Ghurye, 1966)।
यदि इसकी विशेषताओं को सरल रूप में समझें, तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा अनुभव आधारित है—अर्थात इसे केवल पढ़कर नहीं, बल्कि जीकर समझा जाता है; यह समग्र है, जो जीवन के विभिन्न पक्षों को एक साथ जोड़कर देखती है; और यह नैतिक है, जिसका उद्देश्य केवल सफलता नहीं, बल्कि सही और संतुलित जीवन है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल एक बौद्धिक प्रणाली नहीं, बल्कि एक जीवन पद्धति के रूप में समझा जाना चाहिए।

**3. ऐतिहासिक विकास**

भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप किसी एक समय में तैयार नहीं हुआ, बल्कि यह एक लंबी ऐतिहासिक यात्रा का परिणाम है। यह यात्रा कई चरणों से होकर गुज़री है,हर चरण ने इसमें कुछ नया जोड़ा, कुछ बदला, लेकिन इसकी मूल भावना को कोई  समाप्त नहीं कर पाया। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता भी है कि यह बदलते समय के साथ स्वयं को ढालती रही, फिर भी अपनी पहचान बनाए रखी (Thapar, 2002)।  सबसे पहले यदि हम वैदिक काल की बात करें, तो यही वह समय है जब इस परंपरा की नींव पड़ी। वेदों और उपनिषदों में जीवन और ब्रह्मांड से जुड़े गहरे प्रश्नों पर विचार किया गया,हम कौन हैं, जीवन का उद्देश्य क्या है, और सत्य क्या है (Radhakrishnan, 1953)। ऋषि परंपरा के माध्यम से यह ज्ञान मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ा। इस काल में ऋत (प्रकृति और ब्रह्मांड की संतुलित एवं नियामक व्यवस्था) धर्म और सत्य जैसी अवधारणाएँ विकसित हुईं, जिन्होंने जीवन को एक नैतिक और ब्रह्मांडीय व्यवस्था से जोड़ दिया। यहाँ ज्ञान केवल बाहरी दुनिया को समझने का साधन नहीं था, बल्कि आत्मबोध की दिशा में एक प्रयास था। इसके बाद महाकाव्य काल आता है, जहाँ ज्ञान और अधिक व्यावहारिक रूप में सामने आता है।

रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों ने जटिल दार्शनिक विचारों को सरल कथाओं और चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया (Basham, 1954)। राम के जीवन में कर्तव्य और मर्यादा का आदर्श दिखता है, जबकि महाभारत जीवन की कठिन परिस्थितियों में धर्म का निर्णय करना सिखाता है। इस काल में ज्ञान केवल विचार नहीं रहा, बल्कि जीवन के मार्गदर्शन का साधन बन गया। शास्त्रीय और राजनैतिक काल में यह ज्ञान और अधिक संगठित और व्यावहारिक रूप में विकसित हुआ। चाणक्य ने अर्थशास्त्र के माध्यम से राज्य, अर्थव्यवस्था और शासन के सिद्धांत प्रस्तुत किए, वहीं सम्राट अशोक ने शासन को नैतिकता से जोड़ने का प्रयास किया। इस समय यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल आध्यात्मिक या व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

इसी समय के आसपास एक वैकल्पिक धारा के रूप में श्रमण परंपराएँ (वैदिक परंपरा के समानांतर विकसित एक वैकल्पिक ज्ञान परंपरा) उभरीं - बौद्ध और जैन विचारधाराएँ, और आगे चलकर सिख परंपरा। इन सभी ने ज्ञान को करुणा, अहिंसा और समानता के दृष्टिकोण से देखा। गौतम बुद्ध ने दुःख और उसके कारणों को समझने का मार्ग दिया, जबकि महावीर ने अहिंसा और संयम पर बल दिया (Madan, 1991)। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में विचारों की विविधता को स्थान दिया गया और संवाद की परंपरा बनी रही। मध्यकाल में भारत में इस्लामी और मुगल प्रभाव आए, जिनसे सांस्कृतिक और ज्ञान परंपरा में नए तत्व जुड़े। लेकिन सबसे बड़ा परिवर्तन औपनिवेशिक काल में आया, जब अंग्रेजों ने शिक्षा प्रणाली को बदल दिया। इस नई शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य प्रशासनिक कार्यों के लिए लोगों को तैयार करना था, जिसके कारण पारंपरिक ज्ञान धीरे-धीरे पीछे छूटता गया। भारतीय भाषाओं और परंपरागत शिक्षण पद्धतियों का महत्व कम हो गया और ज्ञान का उद्देश्य सीमित होकर नौकरी तक रह गया (Sharma, 2005)।

आधुनिक काल में यह स्थिति और जटिल हो गई। एक ओर आधुनिकता, विज्ञान और तकनीक का विकास हुआ, तो दूसरी ओर परंपरा से दूरी बढ़ने लगी। यह एक प्रकार का द्वंद्व था ,आधुनिक बनना है, लेकिन अपनी पहचान भी बचानी है। फिर भी इसी दौर में एक पुनर्विचार शुरू हुआ, जिसमें भारतीय ज्ञान परंपरा को नए संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया। योग, आयुर्वेद और भारतीय दर्शन को वैश्विक स्तर पर पहचान मिलने लगी , जिससे यह स्पष्ट हुआ कि यह परंपरा केवल अतीत की चीज नहीं है, बल्कि आज भी उपयोगी है। इस पूरे ऐतिहासिक विकास को देखने से एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है—भारतीय ज्ञान परंपरा कभी स्थिर नहीं रही। यह समय के साथ बदलती रही, नई परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालती रही, लेकिन इसके मूल तत्व संतुलन, नैतिकता और समग्र दृष्टि हमेशा बने रहे। यही कारण है कि यह परंपरा आज भी प्रासंगिक है और भविष्य के लिए भी महत्वपूर्ण बनी रह सकती है।

**4. भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रमुख विशेषताएँ**

भारतीय ज्ञान परंपरा को यदि एक नजर में समझना हो तो कहा जा सकता है कि यह जीवन को केवल समझने का नहीं, बल्कि उसे संतुलित और सार्थक ढंग से जीने का मार्ग देती है। इसकी विशेषताएँ अलग-अलग बिंदुओं में जरूर दिखाई देती हैं, लेकिन वास्तव में ये सभी एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं (Hiriyanna, 1993)। सबसे पहले इसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति को समझना जरूरी है। भारतीय दृष्टि में मनुष्य केवल शरीर नहीं है, बल्कि उसके भीतर एक चेतना भी है, जिसे आत्मा कहा गया है। इसी कारण यहाँ जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक सुख प्राप्त करना नहीं, बल्कि आत्मबोध और आंतरिक शांति प्राप्त करना भी माना गया है। उपनिषदों में बार-बार यह बात सामने आती है कि मनुष्य को अपने भीतर झांकना चाहिए (Radhakrishnan, 1953)। यहाँ आध्यात्मिकता का अर्थ संसार से भागना नहीं है, बल्कि जीवन के बीच रहते हुए उसके गहरे अर्थ को समझना है। इसके साथ ही नैतिकता इस परंपरा का दूसरा महत्वपूर्ण आधार है।

भारतीय ज्ञान में धर्म का अर्थ केवल पूजा या अनुष्ठान नहीं है, बल्कि वह सही आचरण और कर्तव्य से जुड़ा हुआ है। व्यक्ति को अपने व्यवहार के प्रति जिम्मेदार बनाना ही इसका उद्देश्य है। यही कारण है कि यहाँ सफलता से अधिक महत्व सही होने को दिया गया है। रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी धर्म का पालन करना क्यों आवश्यक है (Basham, 1954)। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक और प्रमुख विशेषता इसकी समग्र दृष्टि है। यह जीवन को अलग-अलग हिस्सों में बांटकर नहीं देखती, बल्कि उसे एक संपूर्ण रूप में समझती है। शरीर, मन और आत्मा—तीनों का संतुलन आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार व्यक्ति और समाज के बीच भी एक संबंध स्थापित किया गया है। जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों को महत्व दिया गया है, लेकिन संतुलन के साथ। यही कारण है कि यहाँ पुरुषार्थ चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का विचार विकसित हुआ, जो जीवन के विभिन्न आयामों को एक साथ जोड़ता है।

प्रकृति के साथ सामंजस्य भी इस परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय दृष्टि में प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं माना गया, बल्कि उसे सम्मान और सह-अस्तित्व के रूप में देखा गया है। नदियों को माता कहा गया, वृक्षों की पूजा की गई और पशुओं तक को जीवन का हिस्सा माना गया। यह दृष्टिकोण केवल धार्मिक भावना नहीं, बल्कि एक गहरी पर्यावरणीय समझ को दर्शाता है। आज जब पर्यावरण संकट एक गंभीर समस्या बन चुका है, तब यह विचार और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक खास पहचान यह भी है कि यह केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रही, बल्कि लोकजीवन में भी विकसित हुई। लोक ज्ञान और लोक कला इसके जीवंत उदाहरण हैं, खेती, मौसम, स्वास्थ्य और जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ा ज्ञान लोगों के अनुभव से विकसित हुआ और पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहा।

लोकगीत, नृत्य और परंपराएँ इस ज्ञान को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में ज्ञान केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि जीवन में जिया जाता है (Mukerji, 1942; Madan, 1991)। अंत में, गुरु-शिष्य परंपरा इस ज्ञान के प्रसार का महत्वपूर्ण माध्यम रही है। यहाँ गुरु केवल शिक्षक नहीं होता, बल्कि मार्गदर्शक होता है, और शिष्य केवल छात्र नहीं, बल्कि सीखने वाला साधक होता है। गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य केवल विषय ज्ञान देना नहीं था, बल्कि चरित्र निर्माण और जीवन मूल्यों को स्थापित करना भी था। ज्ञान का स्थानांतरण केवल शब्दों से नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव और उदाहरणों से होता था। इन सभी विशेषताओं को एक साथ देखने पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल एक बौद्धिक प्रणाली नहीं है, बल्कि जीवन की एक संपूर्ण पद्धति है। यह व्यक्ति को भीतर से मजबूत बनाती है, समाज को व्यवस्थित करती है और प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि यह परंपरा आज भी जीवित है और भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक बन सकती है।

**5. दार्शनिक आधार**

भारतीय ज्ञान परंपरा को यदि उसकी गहराई में समझना हो, तो उसके दार्शनिक आधार को समझना जरूरी हो जाता है। यही वह आधार है, जिस पर पूरी परंपरा टिकी हुई है। यहाँ दर्शन केवल बौद्धिक चर्चा नहीं है, बल्कि जीवन को समझने और जीने का मार्ग है (Hiriyanna, 1993)। भारतीय दर्शन की शुरुआत ही कुछ मूल प्रश्नों से होती है—मनुष्य कौन है, जीवन का उद्देश्य क्या है, और इस संसार का अंतिम सत्य क्या है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ सामने आती हैं। आत्मा को व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप माना गया है, जो शरीर से अलग और स्थायी है। ब्रह्म को उस परम सत्य के रूप में समझा गया है, जो पूरे ब्रह्मांड का आधार है, और मोक्ष का अर्थ है—इस सत्य को जानकर जीवन के बंधनों से मुक्त होना (Radhakrishnan, 1953)। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह दर्शन केवल किसी एक विचारधारा तक सीमित नहीं है।

भारतीय परंपरा में अलग-अलग दृष्टिकोणों को स्थान दिया गया है। यही कारण है कि यहाँ षड्दर्शन की परंपरा विकसित हुई—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त (Dasgupta, 1975)। सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष के भेद को स्पष्ट करता है और यह समझाता है कि संसार कैसे बना है। योग दर्शन उसी ज्ञान को व्यवहार में लाने का मार्ग बताता है, जिसमें मन और चित्त को नियंत्रित करने की प्रक्रिया पर जोर दिया गया है। न्याय और वैशेषिक दर्शन तर्क और पदार्थ के विश्लेषण के माध्यम से सत्य को समझने का प्रयास करते हैं। मीमांसा दर्शन कर्म और यज्ञ की व्याख्या करता है, जबकि वेदान्त दर्शन उपनिषदों के आधार पर ब्रह्म और आत्मा की एकता को स्थापित करता है। इन सभी दर्शनों में भले ही दृष्टिकोण अलग-अलग हों, लेकिन उनका उद्देश्य एक ही है—सत्य की खोज और जीवन को समझना। यही विविधता भारतीय ज्ञान परंपरा की एक बड़ी विशेषता भी है। इसके साथ ही भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यह जीवन के चार आधार माने गए हैं, जो बताते हैं कि मनुष्य को केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि भौतिक और सामाजिक जीवन में भी संतुलन बनाए रखना चाहिए (Hiriyanna, 1993)।

भारतीय दर्शन की एक और विशेषता यह है कि इसमें आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार की विचारधाराओं को स्थान मिला है। जहाँ एक ओर वेदान्त जैसे दर्शन ईश्वर और आत्मा को स्वीकार करते हैं, वहीं बौद्ध और जैन दर्शन ईश्वर की पारंपरिक अवधारणा से अलग रास्ता अपनाते हैं (Madan, 1991)। फिर भी ये सभी भारतीय ज्ञान परंपरा का हिस्सा हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन किसी एक विचार को थोपता नहीं, बल्कि विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। यहाँ तर्क भी है, अनुभव भी है और साधना भी। संक्षेप में कहा जाए तो भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक आधार उसे गहराई और व्यापकता प्रदान करता है। यह मनुष्य को केवल बाहरी दुनिया को समझने के लिए नहीं, बल्कि अपने भीतर झाँकने और जीवन के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए प्रेरित करता है, यही इसकी सबसे बड़ी शक्ति है।

**6. सांस्कृतिक आयाम**

यदि भारतीय ज्ञान परंपरा को सबसे सहज और प्रत्यक्ष रूप में देखना हो, तो वह संस्कृति के भीतर दिखाई देती है। यहाँ ज्ञान केवल ग्रंथों में नहीं रहता, बल्कि जीवन के व्यवहार, उत्सवों, भाषाओं और परंपराओं में जीवित रहता है। यही कारण है कि भारत में संस्कृति और ज्ञान को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता (Madan, 1991)। जो कुछ लोग करते हैं, मनाते हैं, बोलते हैं और जीते हैं—वही ज्ञान का वास्तविक रूप बन जाता है। भारतीय समाज में लोक ज्ञान और लोक कला इस परंपरा के सबसे जीवंत उदाहरण हैं। लोक ज्ञान वह है जो लोगों के अनुभव से विकसित हुआ है—खेती के तरीके, मौसम की समझ, घरेलू उपचार, जल और जंगल के उपयोग की पारंपरिक विधियाँ। यह ज्ञान किसी एक व्यक्ति का नहीं होता, बल्कि पूरे समुदाय का साझा अनुभव होता है।

इसी तरह लोक कला उस ज्ञान की अभिव्यक्ति है—लोकगीत, नृत्य, चित्रकला, हस्तशिल्प आदि के रूप में। इन सबमें केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन का अनुभव और सामाजिक समझ भी छिपी होती है (Mukerji, 1942)। भारतीय संस्कृति में त्योहार और अनुष्ठान भी ज्ञान के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। सामान्यतः इन्हें केवल धार्मिक या सामाजिक उत्सव के रूप में देखा जाता है, लेकिन इनके पीछे एक गहरा अर्थ छिपा होता है। ये त्योहार समाज को जोड़ने, नैतिक मूल्यों को मजबूत करने और प्रकृति के साथ तालमेल बनाए रखने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, ऋतु परिवर्तन के अनुसार मनाए जाने वाले पर्व केवल आनंद का अवसर नहीं होते, बल्कि प्रकृति के चक्र को समझने का भी माध्यम होते हैं। इसी प्रकार जीवन के विभिन्न चरणों—जन्म, विवाह, मृत्यु—से जुड़े संस्कार व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ते हैं और उसे जीवन के नियम सिखाते हैं (Ghurye, 1966)।

भाषा और साहित्य भी इस परंपरा के वाहक रहे हैं। भारत में विभिन्न भाषाओं और बोलियों के माध्यम से ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहा है। वेद, उपनिषद, महाकाव्य जैसे ग्रंथों से लेकर लोक कथाएँ, दोहे और भजन तक—हर स्तर पर ज्ञान को सरल और बोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। कबीर, तुलसीदास, सूरदास जैसे संतों ने गहरे दार्शनिक विचारों को आम भाषा में व्यक्त किया, जिससे सामान्य व्यक्ति भी उन्हें समझ सका। इससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान का संवाहक है (Basham, 1954)। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता विविधता में एकता है। यहाँ अलग-अलग भाषाएँ, पहनावे, रीति-रिवाज और जीवनशैलियाँ हैं, लेकिन इसके बावजूद एक साझा सांस्कृतिक आधार बना रहता है। यह एकता किसी एकरूपता से नहीं आती, बल्कि विभिन्नताओं को स्वीकार करने से आती है। यही कारण है कि भारत में विभिन्न परंपराएँ होते हुए भी एक समन्वय बना रहता है । इन सभी आयामों को एक साथ देखने पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल सैद्धांतिक या बौद्धिक विषय नहीं है, बल्कि यह संस्कृति के माध्यम से समाज के भीतर जीवित रहती है। यह लोगों के व्यवहार में, उनके उत्सवों में, उनकी भाषा में और उनके दैनिक जीवन में दिखाई देती है। यही इसकी सबसे बड़ी शक्ति है कि यह केवल पढ़ी नहीं जाती, बल्कि जी जाती है।

**7. परिवर्तन और चुनौतियाँ**

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि यह समय के साथ बदलती भी रही और अपनी पहचान को बनाए भी रखती रही। लेकिन पिछले दो–तीन सौ वर्षों में जो परिवर्तन आए हैं, उन्होंने इसके सामने कुछ गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। आज की स्थिति को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम इन परिवर्तनों को केवल आलोचना के रूप में नहीं, बल्कि एक वास्तविक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखें (Thapar, 2002)। सबसे पहले पाश्चात्यीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव सामने आता है। आधुनिक समय में विज्ञान, तकनीक और संचार के विकास ने पूरी दुनिया को जोड़ दिया है। इससे ज्ञान का आदान-प्रदान तेज हुआ, लेकिन इसके साथ ही एक असंतुलन भी पैदा हुआ। पश्चिमी जीवनशैली और सोच का प्रभाव इतना बढ़ा कि स्थानीय ज्ञान और परंपराएँ पीछे छूटने लगीं।

आज के युवा अधिकतर आधुनिक और वैश्विक दृष्टिकोण से प्रभावित हैं, जो स्वाभाविक भी है, लेकिन कई बार इसके कारण वे अपनी जड़ों से दूर होते जा रहे हैं। यहाँ समस्या पश्चिमी ज्ञान में नहीं है, बल्कि संतुलन के अभाव में है (Madan, 1991)। इस स्थिति को समझने के लिए औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के प्रभाव को भी देखना होगा। अंग्रेजों द्वारा लागू की गई शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य भारतीय समाज को उसके पारंपरिक ज्ञान से जोड़ना नहीं, बल्कि प्रशासनिक जरूरतों के अनुसार तैयार करना था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं, गुरुकुल परंपरा और लोक ज्ञान का महत्व कम होता गया। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को समझना नहीं, बल्कि नौकरी प्राप्त करना बन गया। आज भी हमारे शिक्षा तंत्र में इसका प्रभाव देखा जा सकता है (Sharma, 2005)। आधुनिक शिक्षा और पारंपरिक ज्ञान के बीच जो अंतर पैदा हुआ है, वह भी एक बड़ी चुनौती है।

आज का शिक्षा तंत्र अधिकतर परीक्षा, अंक और करियर पर केंद्रित है। इसमें जीवन मूल्यों, नैतिकता और आत्मविकास के लिए बहुत कम स्थान बचता है। इसके विपरीत भारतीय ज्ञान परंपरा जीवन को समग्र रूप में देखती थी। इस अंतर के कारण कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति जानकारी तो बहुत प्राप्त कर लेता है, लेकिन जीवन को सही ढंग से समझ नहीं पाता (Mukerji, 1942)। युवा पीढ़ी की स्थिति इस संदर्भ में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। आज का युवा एक ऐसे दौर में है जहाँ एक ओर आधुनिकता और तकनीक है, और दूसरी ओर परंपरा और संस्कृति। इस द्वंद्व में कई बार वह भ्रमित हो जाता है। उसे यह समझ नहीं आता कि क्या अपनाना है और क्या छोड़ना है। कुछ लोग परंपरा को पूरी तरह अस्वीकार कर देते हैं, जबकि कुछ बिना समझे उसे पूरी तरह स्वीकार कर लेते हैं। दोनों ही स्थितियाँ संतुलित नहीं हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि वैश्विक स्तर पर आज जो समस्याएँ सामने आ रही हैं—जैसे पर्यावरण संकट, मानसिक तनाव और जीवन में असंतुलन—वे केवल भारत तक सीमित नहीं हैं।

पूरी दुनिया इनसे जूझ रही है, ऐसे में भारतीय ज्ञान परंपरा के कुछ तत्व, जैसे योग, ध्यान और संतुलित जीवन दृष्टि, वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। यह स्थिति अपने आप में एक अवसर भी है। अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ उसे एक ओर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है और दूसरी ओर नए अवसर भी मिल रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम न तो इसे पूरी तरह त्यागें और न ही बिना समझे इसे अपनाएँ। बल्कि एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाएँ, जिसमें हम आधुनिकता और परंपरा दोनों के बीच सही सामंजस्य स्थापित कर सकें। यही दृष्टिकोण इस परंपरा को जीवित और प्रासंगिक बनाए रख सकता है।

**8. समकालीन पुनर्जागरण**

कुछ समय पहले तक भारतीय ज्ञान परंपरा को "पुरानी बात" कहकर एक किनारे रख दिया गया था। लेकिन अब धीरे-धीरे स्थिति बदल रही है। एक तरह से कहें तो यह परंपरा फिर से सामने आ रही है—लेकिन इस बार उसी पुराने रूप में नहीं, बल्कि एक नए संदर्भ में। लोग अब इसे केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि आज की जरूरत के रूप में देखने लगे हैं। यही परिवर्तन इस समकालीन पुनर्जागरण की पहचान है (Thapar, 2002)। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम शिक्षा के क्षेत्र में दिखाई देता है। नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) को शामिल करने की बात केवल एक शैक्षणिक बदलाव नहीं है, बल्कि सोच में बदलाव का संकेत है। अब यह समझ बनने लगी है कि शिक्षा केवल रोजगार तक सीमित नहीं हो सकती। उसमें जीवन, समाज, संस्कृति और मूल्य भी शामिल होने चाहिए। इसलिए भारतीय दर्शन, कला, भाषा और पारंपरिक ज्ञान को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है (Government of India, 2020; Debroy, 2021)।

यह प्रयास इस बात की ओर इशारा करता है कि हम अपनी जड़ों को समझते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं। इसी के साथ विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में भी इस विषय पर काम बढ़ रहा है। कई स्थानों पर भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़े केंद्र स्थापित किए जा रहे हैं, जहाँ प्राचीन ग्रंथों और परंपराओं का अध्ययन आधुनिक संदर्भ में किया जा रहा है। यह केवल पुराने ज्ञान को दोहराने का काम नहीं है, बल्कि यह समझने का प्रयास है कि उस ज्ञान का आज के समाज में क्या उपयोग हो सकता है। जैसे पारंपरिक कृषि पद्धतियों, आयुर्वेद या भारतीय मनोविज्ञान पर नए तरीके से शोध किया जा रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को अब एक गंभीर अध्ययन के विषय के रूप में देखा जा रहा है (Madan, 1991; Kapoor, 2019)।

यदि हम वैश्विक स्तर पर देखें, तो यह पुनर्जागरण और भी स्पष्ट दिखाई देता है। आज योग केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि दुनिया के कई देशों में लोग इसे अपने जीवन का हिस्सा बना रहे हैं। इसी प्रकार आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों में भी रुचि बढ़ रही है। ध्यान और मानसिक शांति से जुड़ी भारतीय अवधारणाएँ अब आधुनिक जीवनशैली का हिस्सा बनती जा रही हैं (Ministry of AYUSH, 2015)। यह एक दिलचस्प स्थिति है कि जिस ज्ञान को हम कभी नजरअंदाज कर रहे थे, वही आज विश्व के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहा है। हालांकि यह पुनर्जागरण केवल बाहरी स्तर पर नहीं होना चाहिए। इसका वास्तविक अर्थ तभी है जब यह समझ के स्तर पर हो। यदि हम केवल दिखावे या प्रवृत्ति के रूप में इसे अपनाएँगे, तो इसका गहरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को उसके मूल रूप में समझा जाए और उसे आधुनिक जीवन से जोड़ा जाए। इस प्रकार समकालीन समय में भारतीय ज्ञान परंपरा एक नए चरण में प्रवेश कर रही है। यह अब केवल अतीत की स्मृति नहीं है, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की संभावना बनती जा रही है। यदि इसे सही दृष्टि और समझ के साथ आगे बढ़ाया जाए, तो यह समाज को संतुलित और मानवीय दिशा दे सकती है।

**9. वर्तमान और भविष्य में प्रासंगिकता**

आज का समय तेज़ बदलाव का समय है। तकनीक ने जीवन को आसान बनाया है, लेकिन उसी के साथ कई नई उलझनें भी पैदा कर दी हैं। बाहर से जीवन जितना व्यवस्थित दिखाई देता है, भीतर से उतना ही असंतुलित होता जा रहा है। ऐसे में यह सवाल स्वाभाविक है कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा आज के दौर में कोई उपयोग रखती है, या वह केवल अतीत की बात बनकर रह गई है। यदि इसे ध्यान से देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि इसकी प्रासंगिकता आज पहले से भी अधिक है (Madan, 1991; Kapoor, 2019)।

सबसे पहले नैतिक संकट की बात करें, तो आज समाज में सही और गलत के बीच की रेखा कई बार धुंधली हो जाती है। व्यक्ति अपने हित को प्राथमिकता देता है और सामूहिक जिम्मेदारी पीछे छूट जाती है। कानून व्यवस्था अपने स्थान पर है, लेकिन वह केवल बाहरी नियंत्रण कर सकती है, भीतर की चेतना नहीं जगा सकती। भारतीय ज्ञान परंपरा "धर्म" के माध्यम से इसी आंतरिक चेतना को विकसित करने की बात करती है। यहाँ धर्म का अर्थ पूजा-पाठ से अधिक कर्तव्य और आचरण से है। यदि व्यक्ति अपने कर्तव्य को समझकर जीवन जीने लगे, तो समाज में विश्वास और संतुलन अपने आप स्थापित हो सकता है (Hiriyanna, 1993)।

पर्यावरण की स्थिति भी आज एक गंभीर चिंता का विषय है। विकास की दौड़ में प्रकृति के साथ जो व्यवहार किया गया है, उसके परिणाम अब स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ केवल तकनीकी समाधान से पूरी तरह हल नहीं हो सकतीं। इसके लिए सोच में बदलाव जरूरी है। भारतीय ज्ञान परंपरा प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं मानती, बल्कि उसके साथ सह-अस्तित्व की बात करती है। जब प्रकृति को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, तो उसका संरक्षण भी स्वाभाविक रूप से होता है (Mukerjee, 1949)। यही दृष्टिकोण आज की आवश्यकता है।

मानसिक स्वास्थ्य की समस्या भी तेजी से बढ़ रही है। आधुनिक जीवन में प्रतिस्पर्धा, अपेक्षाएँ और अकेलापन व्यक्ति को भीतर से कमजोर कर रहे हैं। इस स्थिति में भारतीय ज्ञान परंपरा का दृष्टिकोण अलग है। यह बाहरी परिस्थितियों को बदलने से पहले व्यक्ति को अपने भीतर झांकने की प्रेरणा देती है। योग, ध्यान और संतुलित जीवन पद्धति इसी सोच का हिस्सा हैं। यह केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक संतुलन का मार्ग भी हैं। यही कारण है कि आज दुनिया भर में इनकी स्वीकृति बढ़ रही है ।

इसके साथ ही राष्ट्रीय पहचान का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। किसी भी समाज के लिए अपनी जड़ों से जुड़ाव आवश्यक होता है। यदि व्यक्ति अपनी परंपरा को समझता है, तो उसमें आत्मविश्वास भी बढ़ता है। आज के युवा वैश्विक स्तर पर आगे बढ़ना चाहते हैं, जो अच्छी बात है, लेकिन यदि यह प्रगति अपनी पहचान को छोड़कर होती है, तो उसमें स्थायित्व नहीं होता। भारतीय ज्ञान परंपरा इस संतुलन को सिखाती है—कि आधुनिकता को अपनाते हुए भी अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा जा सकता है (Ghurye, 1966)।

इन सभी पहलुओं को एक साथ देखें तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं है। यह वर्तमान की समस्याओं को समझने और उनके समाधान की दिशा देने की क्षमता रखती है (Kapoor, 2019)। भविष्य की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह विकास को केवल भौतिक नहीं, बल्कि मानवीय और संतुलित बनाने की प्रेरणा देती है।

अंततः बात इतनी सी है कि यह परंपरा तभी उपयोगी है जब इसे सही रूप में समझा जाए। यदि इसे केवल गौरव के रूप में देखा जाएगा, तो इसका प्रभाव सीमित रहेगा। लेकिन यदि इसे जीवन में उतारा जाएगा, तो यह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए दिशा देने का कार्य कर सकती है। यही इसकी वास्तविक प्रासंगिकता है।

**10. आलोचनात्मक दृष्टिकोण**

भारतीय ज्ञान परंपरा की चर्चा करते समय उसकी महानता और उपयोगिता पर ध्यान देने के साथ-साथ संतुलित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी अपनाना होगा, जिससे हम इसके भीतर मौजूद सीमाओं और चुनौतियों को भी समझ सकें। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो यह अध्ययन अपूर्ण हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम कुछ ज्वलंत सामाजिक मुद्दों जैसे जाति व्यवस्था, असमानता, स्त्रियों की स्थिति और नागरिक चेतना (civic sense)—को भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में देखें (Ghurye, 1966; Mukerji, 1942)। सबसे पहले जाति और सामाजिक असमानता का प्रश्न आता है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक ऐतिहासिक वास्तविकता रही है। प्रारंभिक रूप में यह व्यवस्था (वर्ण ) कार्य और गुणों के आधार पर मानी जाती थी, लेकिन समय के साथ यह जन्म आधारित और कठोर रूप लेती गई। इसके परिणामस्वरूप समाज में ऊँच-नीच और भेदभाव की स्थिति उत्पन्न हुई (Ghurye, 1966)। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या यह भी भारतीय ज्ञान परंपरा का हिस्सा है?

यदि गहराई से देखें, तो मूल ग्रंथों में मानव समानता और एकत्व की बात की गई है—"सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसी धारणाएँ इसका उदाहरण हैं । लेकिन व्यवहारिक समाज में इन आदर्शों का पालन हमेशा समान रूप से नहीं हुआ। यही वह स्थान है जहाँ परंपरा और व्यवहार के बीच अंतर दिखाई देता है। इसलिए यह जरूरी है कि हम यह समझें कि जो विकृतियाँ समाज में आईं, वे परंपरा के मूल स्वरूप का हिस्सा नहीं थीं, बल्कि समय के साथ विकसित हुई सामाजिक समस्याएँ थीं । इसी प्रकार स्त्रियों की स्थिति का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय परंपरा में स्त्रियों को शिक्षा और सम्मान का अधिकार प्राप्त था—गर्गी और मैत्रेयी जैसे उदाहरण इसका प्रमाण हैं। लेकिन बाद के काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई और कई सामाजिक बंधन उन पर लागू हो गए। यहाँ भी वही बात सामने आती है कि आदर्श और व्यवहार में अंतर रहा (Altekar, 1938)। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भारतीय ज्ञान परंपरा के उन मूल तत्वों को पहचानें, जो समानता और सम्मान की बात करते हैं, और उन सामाजिक प्रथाओं से अलग करें, जो समय के साथ विकृत रूप में विकसित हुईं।

नागरिक चेतना (civic sense) का विषय भी इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण है, आज के समाज में सार्वजनिक जीवन के प्रति जिम्मेदारी की कमी एक बड़ी समस्या बनती जा रही है,सड़क पर कचरा फेंकना, नियमों का पालन न करना, सार्वजनिक संपत्ति का सम्मान न करना आदि। यदि हम भारतीय ज्ञान परंपरा को देखें, तो उसमें "धर्म" और "कर्तव्य" की अवधारणा स्पष्ट रूप से मौजूद है, जो व्यक्ति को अपने व्यवहार के प्रति जिम्मेदार बनाती है । लेकिन आधुनिक जीवन में यह चेतना कमजोर होती जा रही है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा इन समस्याओं का समाधान दे सकती है? उत्तर है—हाँ, लेकिन तभी जब इसे सही रूप में समझा जाए। यदि हम केवल परंपरा का नाम लेते रहें, लेकिन उसके मूल सिद्धांतों को व्यवहार में न लाएँ, तो कोई परिवर्तन संभव नहीं है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें परंपरा को अंधविश्वास या जड़ता के रूप में नहीं देखना चाहिए, और न ही उसे पूरी तरह आदर्श मान लेना चाहिए। सही दृष्टिकोण यह है कि हम उसमें से उन तत्वों को पहचानें, जो आज भी उपयोगी हैं—जैसे समानता, सह-अस्तित्व, कर्तव्य और नैतिकता—और उन्हें आधुनिक समाज में लागू करें। अंततः आलोचनात्मक दृष्टिकोण का अर्थ यह नहीं है कि हम परंपरा को अस्वीकार कर दें, बल्कि इसका अर्थ है—उसे समझें, परखें और सुधारें।

**11. निष्कर्ष एवं सुझाव**

इस पूरे अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं है, बल्कि जीवन को समझने और व्यवस्थित करने का एक समग्र तरीका है। यह व्यक्ति, समाज और प्रकृति—तीनों के बीच संतुलन स्थापित करने की बात करती है। इसमें ज्ञान, नैतिकता, कर्तव्य, सह-अस्तित्व और आत्मबोध जैसे तत्व एक साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए इसे केवल धार्मिक या सांस्कृतिक विषय मानना इसकी सीमित समझ होगी; वास्तव में यह जीवन का एक व्यापक विज्ञान है। लेकिन यहाँ एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने योग्य है कि इस परंपरा को अंधानुकरण के रूप में नहीं अपनाया जा सकता। हर परंपरा समय के साथ बदलती है, इसलिए आवश्यक है कि हम इसके मूल भाव को समझें और उसे आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित करें।

आज की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि ज्ञान और व्यवहार के बीच जो दूरी बन गई है, उसे कैसे कम किया जाए। यदि यह दूरी समाप्त होती है, तो भारतीय ज्ञान परंपरा केवल विचार तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि जीवन का हिस्सा बन सकेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि इसे व्यवहार में कैसे लाया जाए। इसके लिए औपचारिक और अनौपचारिक—दोनों स्तरों पर प्रयास आवश्यक हैं। सबसे पहले औपचारिक शिक्षा की बात करें, तो विद्यालय और विश्वविद्यालय इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल एक विषय के रूप में नहीं, बल्कि विभिन्न विषयों के साथ जोड़कर पढ़ाया जाना चाहिए। जैसे नैतिक शिक्षा, पर्यावरण अध्ययन,

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में इसके तत्वों को समाहित किया जा सकता है। इसके साथ ही केवल सैद्धांतिक अध्ययन पर्याप्त नहीं है, बल्कि योग, ध्यान, लोक कला और सामुदायिक गतिविधियों को भी शिक्षा का हिस्सा बनाया जाना चाहिए, ताकि विद्यार्थी इसे अनुभव के स्तर पर समझ सकें। शिक्षकों की भूमिका भी यहाँ अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षक स्वयं इस परंपरा को समझते हैं और उसे जीवन में अपनाते हैं, तो वे इसे अधिक प्रभावी ढंग से विद्यार्थियों तक पहुँचा सकते हैं। इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण में भी भारतीय ज्ञान परंपरा की समझ को शामिल करना आवश्यक है।

अनौपचारिक स्तर पर परिवार सबसे पहला और महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों को प्रारंभिक संस्कार, मूल्य और व्यवहार परिवार से ही मिलते हैं। यदि परिवार में संवाद, कहानियों, व्यवहार और उदाहरणों के माध्यम से नैतिकता और जिम्मेदारी की भावना विकसित की जाए, तो यह ज्ञान स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ेगा। समाज और समुदाय भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। त्योहारों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से इस ज्ञान को जीवित रखा जा सकता है। लोक ज्ञान और लोक कला को बढ़ावा देना भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में छोटे-छोटे बदलाव करने होंगे। जैसे—अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहना, प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना, और जीवन में संतुलन बनाए रखना। यह परिवर्तन बाहर से नहीं, भीतर से शुरू होता है।

सामूहिक स्तर पर मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म भी एक प्रभावी माध्यम बन सकते हैं। आज के युवा डिजिटल माध्यमों से अधिक जुड़ते हैं, इसलिए यदि सरल और समझने योग्य तरीके से भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े विषयों को प्रस्तुत किया जाए, तो इसका प्रभाव अधिक व्यापक हो सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसे केवल "जानते" हैं या वास्तव में "जीते" हैं। यदि यह केवल पुस्तकों तक सीमित रहेगी, तो इसका प्रभाव सीमित रहेगा, लेकिन यदि यह जीवन का हिस्सा बनती है, तो यह समाज को एक संतुलित और मानवीय दिशा दे सकती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम इसे समझें, परखें और अपने जीवन में अपनाएँ—तभी यह परंपरा वास्तव में जीवित और प्रासंगिक बनी रह सकेगी।

**(संदर्भ सूची)**


Mukerjee, Radhakamal. (1949). The Social Structure of Values. London: Macmillan.

Ghurye, G. S. (1966). Caste and Race in India (5th ed.). Bombay: Popular Prakashan.

Mukerji, D. P. (1942). Modern Indian Culture. Bombay: Hind Kitabs.

Madan, T. N. (1991). Religion in India. New Delhi: Oxford University Press.

Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. London: George Allen & Unwin.

Thapar, Romila. (2002). Early India: From the Origins to AD 1300. New Delhi: Penguin Books.

Sharma, R. S. (2005). India’s Ancient Past. New Delhi: Oxford University Press.

Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson.

Hiriyanna, M. (1993). Outlines of Indian Philosophy. Delhi: Motilal Banarsidass.

Dasgupta, S. N. (1975). A History of Indian Philosophy (Vol. 1). Cambridge: Cambridge University Press.

Altekar, A. S. (1938). The Position of Women in Hindu Civilization. Delhi: Motilal Banarsidass.

Government of India. (2020). National Education Policy 2020. New Delhi: Ministry of Education.

Ministry of AYUSH. (2015). Yoga for Holistic Health. New Delhi: Government of India.

Debroy, Bibek. (2021). Indian Knowledge Systems. New Delhi: Bharatiya Kala Prakashan.

Kapoor, Kapil. (2019). Indian Knowledge Systems: Nature and Relevance. New Delhi: D.K. Printworld.